आत्मा के ज्ञान के लिए नौ दृष्टान्त हैं

रयण दीउ दिणयर दहिउ, दुद्धु घीव पाहाणु।
सुण्णउ रुउ फलिहउ अगिणि, णव दिट्ठंता जाणु॥५७॥

रत्न-हेम-रवि-दूध दधि, घी पत्थर अरु दीप।
स्फटिक रजत और अग्नि नव त्यों जानों यह जीव॥

अन्वयार्थ – रत्न, दीप, सूर्य, दही-दूध-घी, पाषाण, सुवर्ण, चाँदी, स्फटिक, आग – इन नौ दृष्टान्तों से जीव को जानना चाहिए।

वीर संवत २४९२, आषाढ़ शुक्ल ११, मंगलवार, दिनाङ्क २८-०६-१९६६
गाथा ५७ से ५८ प्रवचन नं. २०

यह योगसार शास्त्र है, ५७ वीं गाथा। ५६ गाथा हो गयी – (गाथा) ५६ में ऐसा कहा कि यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है। इस ज्ञान को ज्ञान से प्रत्यक्ष न जाने, तब तक उसे आत्मा का कुछ कार्य नहीं होता, क्योंकि जाननेवाला प्रत्यक्ष ज्ञानस्वरूप, चैतन्यप्रकाशस्वरूप है। वह चैतन्य, चैतन्य को जाने तो उसे प्रत्यक्षपना होता है तो उसे मुक्ति होती है और प्रत्यक्ष जानकर वेदन में-अनुभव में विशेष ले तो कर्म-बन्धन से छूटता है। उस ज्ञान पर यहाँ दृष्टान्त दिया जाता है। चैतन्य ज्ञान का प्रकाश – ऐसा उसका स्वरूप है, उसका प्रत्यक्षपना होना – यह उसका स्वभाव है और यही उसे अनुभव करके मुक्ति देनेवाला है। इसमें दृष्टान्त दिये हैं।

– **आत्मा के ज्ञान के लिए नौ दृष्टान्त हैं।**

रयण दीउ दिणयर दहिउ, दुद्धु घीव पाहाणु।
सुण्णउ रुउ फलिहउ अगिणि, णव दिट्ठंता जाणु॥५७॥

नौ दृष्टान्त दिये हैं। साधारण समझाया जाता है। आत्मा, रत्न-समान है। आत्मा, जैसे रत्न प्रकाशमय है, वैसे आत्मा ज्ञान प्रकाशमय है। जैसे रत्न नित्य और कायम रहनेवाला है, वैसे आत्मा ज्ञानस्वरूप से अविनाशी कायम रहनेवाला है। जैसे रत्न मूल्यवान चीज है, वैसे आत्मा भी अलौकिक अचिन्त्य सम्यग्ज्ञान से ख्याल में आवे – ऐसी कीमती चीज है। समझ में आया?

आत्मा, रत्न के समान एक अमूल्य द्रव्य है। जगत में आत्मा एक अमूल्य द्रव्य है। **परम धन....** आत्मज्ञान रत्न के स्वामी सम्यग्दृष्टि झवेरी हैं। जैसे, झवेरी को रत्न की परीक्षा होती है, वैसे ही भगवान आत्मा चैतन्य निर्मलरत्न है, उसकी कीमत (परीक्षा) सम्यग्दृष्टिरूपी झवेरी को होती है। समझ में आया? कैसा भी रत्न हो परन्तु उसकी कीमत करनेवाला न हो तो उसकी कीमत इसके ख्याल में नहीं आती; वैसे (ही) भगवान आत्मा रत्न – समान शाश्वत् हैं। रत्न बहुत थोड़े मिलते हैं, बहुत टिकते हैं, प्रकाशमय है; इस कारण उनकी कीमत की जाती है। इसी तरह भगवान ज्ञानरत्न किसी को स्वभाव में प्राप्त हो, नित्य टिकाऊ है और उसकी कीमत अनन्त आनन्द दे – ऐसी उसकी कीमत है; इसलिए उसे रत्न की उपमा (दी है)। यहाँ ज्ञानस्वरूप भगवान को रत्न की उपमा (दी) है। समझ में आया?

झवेरी, सम्यक्त्वी झवेरी उसे परखता है। इन राग-द्वेष, शरीर की क्रिया के द्वारा उसकी परीक्षा नहीं हो सकती। उसकी परीक्षा तो सम्यग्ज्ञान की प्रतीति द्वारा हो सकती है। ऐसा वह चैतन्य रत्न, रत्न की उपमा से उसका दृष्टान्त दिया है।

तथा, तीन रत्न कहे है न? उन्हें प्राप्त करते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र – तीन रत्न कहलाते हैं। पर्याय, तो कहते हैं। **सदा आत्मा ज्ञानज्योति से प्रकाशवान है, अविनाशी है, स्वयं सम्यग्दर्शन रत्नमय, सम्यग्ज्ञान रत्नमय और सम्यक्चारित्र रत्नमय....** स्वरूप ही ऐसा है – ऐसा कहते हैं। उसका स्थायी स्वरूप ही सम्यग्दर्शन रत्नस्वरूप है, सम्यग्ज्ञान रत्नस्वरूप है, सम्यक्चारित्र रत्नस्वरूप है। वस्तु, हाँ! वस्तु।

समझ में आया ? भगवान आत्मा सम्यग्दर्शनरत्न जो पर्याय में है – ऐसा ही यह सम्यग्दर्शनरत्न त्रिकाल उसके स्वभाव में है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसमें सम्यग्दर्शनरत्न, सम्यग्ज्ञानरत्न और सम्यक्चारित्ररत्न इस ज्ञानस्वभाव में पड़े हैं और तीन रत्न द्वारा उसकी परीक्षा हो सकती है। समझ में आया ?

मुमुक्षु – स्वभाव में पड़े हैं फिर भी किसी-किसी को ही मिले ऐसे हैं।

उत्तर – जो साधन करे उसे मिले, ऐसा है। इसलिए किसी-किसी को कहा न! वैसे तो अनन्त आत्माएँ पड़े हैं, अनन्तगुने हैं। पानेवाले को, समझनेवाले को उसकी कीमत करनेवाले को मिलते हैं। कीमत दे उसे मिलते हैं, कीमत दिये बिना मिलता होगा ? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की कीमत भरे तो उसे रत्न मिलें और उन रत्नों द्वारा मुक्ति की, -पूर्ण की प्राप्ति होती है। कहो! ऐसा रत्न भी इसे अनन्त काल से परखना नहीं आया।

परखे माणिक-मोती परखे हेम-कपूर;
एक न परखा आत्मा वहाँ रहा दिग्मूढ़।

मूढ़.... समझ में आया ? सब की परीक्षा की – उसका यह और उसका यह और उसका यह.... आत्मा क्या चीज है ? उसकी परीक्षा नहीं की। सब लौकिक की बड़ी-बड़ी बातें की, यह... यह... यह... यह... रॉकेट ऐसे जाता है और अमुक ऐसे जाता है।

मुमुक्षु – कितनों को आधीन करता है।

उत्तर – धूल में भी किसी को आधीन नहीं करता है। समझता नहीं। चैतन्यरत्न जानने का काम करे या उसे जानते हुए राग करे। करे क्या दूसरा यह ? ज्ञानस्वरूप हूँ – ऐसा भान करे तो जानने का काम करे। ज्ञानस्वरूप है – ऐसा भान न हो तो सामने देखकर राग से देखे तो यह मेरा और मैंने किया – ऐसा माने। दूसरा क्या करे ?

मुमुक्षु – इसके कारण तो सब मशीनें चलती हैं।

उत्तर – धूल में भी नहीं चलती। इसके कारण चलती है ? बिजली को आधीन की ऐसा कहता है। आकाश में से बिजली को आधीन की... गप्प ही गप्प मारता है, मूढ़!

रत्न समान भगवान आत्मा की कीमत सम्यग्ज्ञानी, रत्न की कीमत करता है, कहते हैं। जिसकी नजर में कीमत है, वह नजर से उसे परखता है। आहा...हा... !

दीप समान है। आत्मा दीपक समान स्वपर प्रकाशवान है। भगवान आत्मा दीपक है। चैतन्य-दीपक – चैतन्य प्रदीप। समझ में आया? **दीपक के समान स्व-पर प्रकाशवान है। एक ही काल में यह आत्मा अपने को भी जानता है और सर्व द्रव्यों को, उनके गुण-पर्यायों को भी जानता है।** ऐसा प्रकाशवान चैतन्यसूर्य है – ऐसा कहते हैं। दीपक के समान... स्वयं को जाने, समस्त अनन्त द्रव्य-गुण-पर्याय को और पर के अनन्त द्रव्य-गुण-पर्याय को भिन्न रहकर जाने, इसका नाम प्रकाश (है)। दीपक पर को जानते हुए पररूप नहीं होता; वैसे ही आत्मा स्व को जानते हुए स्वरूप से रहता हुआ, पर को जानते हुए पररूप नहीं होता – ऐसा दीपक-समान आत्मा स्व-पर प्रकाश का अस्तित्व तत्त्व है। कहो, समझ में आया? वास्तव में आत्मा दीपक के समान, पुण्य-पाप के राग, शरीर, वाणी, सबको प्रकाशित करनेवाला तत्त्व है। समझ में आया? रागादि और पर को उत्पन्न करनेवाला तत्त्व नहीं है। स्व-पर को प्रकाशित करे – ऐसा वह तत्त्व है। इसलिए उसे दीपक की उपमा दी है। समझ में आया?

जानता है, तथापि परज्ञेयों से भिन्न है। देखो इसमें लिखा है। जाने, दीपक पर को जाने, दिखलावे परन्तु कहीं पररूप होता है? वैसे ही आत्मा पर को जाने, जानने से कहीं पररूप होता है? शरीर को जाने, राग को जाने, कर्म को जाने, पुद्गल को जाने... जानते हुए दीपक के समान, जैसे दीपक पर को प्रकाशित करे तो दीपक अपने में रहकर पर को प्रकाशित करता है; पररूप नहीं होता। इसी प्रकार चैतन्यदीपक देह में भगवान आत्मा स्वयं को और पर को प्रकाशित करते हुए पररूप हुए बिना प्रकाशित करता है – ऐसा उसका स्वरूप है। कहो, समझ में आया?

यह आत्मा कभी न बुझे ऐसा अनुपम दीपक है। अन्य दीपक तो बुझ जाता है – ऐसा कहते हैं। दीपक तो बुझ जाता है, यह तो बुझता नहीं। शाश्वत् रत्न, शाश्वत् दीपक, अनादि-अनन्त है, इसका बुझना क्या? शाश्वत् चीज का नाश क्या? **इस आत्मा दीपक को किसी तेल की आवश्यकता नहीं है।** उस दीपक को तो तेल की आवश्यकता (पड़ती है) बत्ती की आवश्यकता (पड़ती है) (जबकि) यह तो तेल और बत्ती के बिना जलहल ज्योति भगवान प्रज्वलित है अन्दर। आहा...हा...! चैतन्य दीपक, जिसे तेल

-बत्ती, मन, राग की पुष्टि की आवश्यकता नहीं है – ऐसा कहते हैं। जैसे (रत्न) दीपक को तेल-बत्ती की जरूरत नहीं है, वैसे ही चैतन्य दीपक को मन की और राग की अपेक्षा की जरूरत नहीं है। ऐसा यह चैतन्य दीपक स्वयं से प्रकाशित हो ऐसा है।

यह आत्मा किसी पवन से बुझे ऐसा नहीं है। जैसे वह दीपक है, वह पवन से बुझ जाता है। इस राग और शरीर से आत्मा का नाश हो – ऐसा यह नहीं है। अविनाशी वस्तु दीपक के समान ऐसी की ऐसी जलहल ज्योति अनादि-अनन्त देह-देवल में भिन्न विराजमान है। **सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों को एकसाथ झलकानेवाला है।** समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को एक समय में प्रकाशित करे – ऐसा यह तत्त्व दीपक के समान है।

सूर्य का दृष्टान्त – **आत्मा के सूर्य के समान प्रकाशमान और प्रतापवान है।** कहो, समझ में आया? आत्मा प्रकाशवान्, प्रतापवान है। स्वयं से, प्रताप से शोभता है, अपने प्रकाश से शोभता है। प्रभुता के लक्षण से भरपूर है न तत्त्व? प्रभुता के लक्षण से स्वतन्त्र.... अपने अखण्ड प्रताप से शोभित हो ऐसा यह तत्त्व अनादि है। समझ में आया? **सर्व लोकालोक का ज्ञाता-दृष्टा है।** जैसे सूर्य सबको बतलाता है (प्रकाशित करता है) तो वह कहीं सबको नहीं बता सकता। यह तो (चैतन्यसूर्य तो) लोकालोक को जाननेवाला है। **परम वीर्यवान् है।** प्रतापवन्त कहा न? जैसे सूर्य का प्रकाश है, वैसे आत्मा में अनन्त वीर्य है। प्रकाश के साथ अनन्त वीर्य का सूर्य भगवान है। अनन्त बल का सूर्य भगवान आत्मा है। आहा...हा...! समझ में आया?

परम शान्त है.... वह सूर्य तो आतापवाला है। यह शान्त, अकषाय, वीतरागस्वभाव से भरपूर सत्त्व तत्त्व है। **यह एक अनुपम सूर्य है।** वह सूर्य तो साधारण है, ऐसे तो असंख्य सूर्य हैं। यह तो एक ही सूर्य अपना है, अपना हाँ! दूसरे का सबका अलग-अलग। अनुपम सूर्य! वह सूर्य तो शाम को ढँक जाता है; यह किसी दिन नहीं ढँकता। चैतन्यसूर्य प्रकाश का बिम्ब है, वह कब ढँकेगा? द्रव्यस्वभाव कब ढँकेगा? वस्तुस्वभाव कब आच्छादित होगा? ऐसा भगवान (आत्मा) सूर्यसमान चैतन्यबिम्ब, देह में विराजमान है।

कोई मेघ या राहु उसे ग्रस नहीं सकता। बादल अथवा राहु, सूर्य को पकड़े यह

ऐसा सूर्य नहीं है। कर्म से कुछ पकड़ा जाये ऐसा नहीं है। राग के विकल्प से पूरा आत्मा ग्रसित हो जाये – ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया? चैतन्यसूर्य भगवान पर से ग्रसित हो ऐसा नहीं है। **स्वयं परमानन्दमय है। जो इस आत्मसूर्य का दर्शन करता है, उसे भी यह आनन्द देता है।** जो इसे देखे उसे आनन्द दे – ऐसा है। यह कहते हैं। जो इसे देखे, उसे आनन्द दे। कहो समझ में आया? आया था न? **नमः समयसारायः** कलश टीका, नहीं? ज्ञान और आनन्द का दातार है। स्वयं शुद्धात्मा ज्ञान और आनन्द का दातार है। अशुद्ध आत्मा और पुद्गल वे कोई ज्ञानदाता इसमें नहीं है। पर का ज्ञान, उसमें ज्ञान नहीं है। पर में सुख नहीं है – पहले (कलश में) आया है। ज्ञान और आनन्द का वह दातार है, उसे जाननेवाले को आनन्द दे, उसे जाननेवाले को आनन्द दे। समझ में आया?

वह सदा निरावरण है। उसे कभी आवरण नहीं है। **एक नियमित स्वक्षेत्र में....** रहनेवाला है। यह सूर्य तो ऐसे से ऐसा उल्टा-सुल्टा घूमता है – ऐसा कहते हैं। सबेरे उगे, ऐसा फिरे... यह तो नियमित असंख्य प्रदेश में विराजमान है। सदा अपना क्षेत्र इतना रहे, यह शरीर का क्षेत्र तो बदलता है। नियमित अनादि-अनन्त असंख्य प्रदेश में विराजमान है, इसका क्षेत्र कभी नहीं बदलता। देह में रहने पर भी, देह के आकाररूप होने पर भी स्वयं अपना आकार नहीं छोड़ता, अपने आकार में रहता है।

अब, दूध-दही की उपमा (दी है)। पाठ में पहले दही-दूध और घी ऐसा रखा है। ये तीन होकर दृष्टान्त एक है, हाँ! तीन दृष्टान्त नहीं; तीन होकर एक है। दूध-दही और घी। **आत्मा के दूध जैसे शुद्धस्वभाव का मनन करने से आत्मा की भावना दृढ़ होती है।** जैसे दूध में से दही होता है न? ऐसे भगवान दूध के समान है, उसका एकाग्र ध्यान करने से उसे दही की मिठास प्रगट होती है और उसमें से जमकर घी होता है। कहो समझ में आया?

मुमुक्षु – दृष्टान्त में से निकले तो अच्छा....

उत्तर – दृष्टान्त में से क्या निकले? निहालभाई! यह तुम्हारे भाई का लड़का है, हाँ! ऐसे दृष्टान्त में से वह हाथ आ जाए.... दृष्टान्त तो उसके लिए है। दृष्टान्त, दृष्टान्त के लिए नहीं है।

भगवान... जैसे दूध को मथने से अथवा जमाने से जैसे दही होता है, वैसे भगवान आत्मा की एकाग्रता होने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का दही प्रगट होता है। उसमें विशेष एकाग्रता से उसमें से इसे घी – मोक्ष की दशा प्रगट होता है। दूध, दही और घी – तीनों की उपमा आत्मा को है। कहो, समझ में आया इसमें? **आत्मा की जागृति ही दहीरूप होना है।** ऐसा कहते हैं। देखो! जागृति।

तत्पश्चात् जैसे दही को बिलोने से घी सहित मक्खन निकलता है, उसी प्रकार आत्मा की भावना करते-करते आत्मानुभव होता है, जो परमानन्द देकर आत्मा को घी-समान बतलाता है। अथवा केवलज्ञान हो जाता है, मूल तो ऐसा है। समझ में आया? कितना निकल जाए तो भी केवलज्ञान (कम नहीं होता)। दूध के समान उसका एकाग्र ध्यान करने से दही के समान मिठास (होती है) और विशेष एकाग्रता करने से दही में से घी निकलता है – ऐसा केवलज्ञान हो जाता है। कहो, यह दृष्टान्त अन्दर समझने के लिए है। दृष्टान्त में से आत्मा निकले ऐसा है? यह भी रचना अद्भुत है! कल्पना सही न!

स्वयं ही दूध है, स्वयं ही दही है, स्वयं ही घी है। मुमुक्षु को निज आत्मारूपी गोरस का ही निरन्तर पान करना चाहिए। लो! यह दूध, दही और घी भगवान आत्मा है। आहा...हा...! शुद्ध चैतन्य का सत्व, वह पूरा दूध समान, उसे प्राप्त करने से अर्थात् उसका मेल-एकाग्र करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का दही निकलता है और उसमें (विशेष) एकाग्र होने से केवलज्ञान का मक्खन अथवा घी निकलता है – ऐसा यह आत्मा दूध, दही और घी जैसा है। लो! यह तो सरल दृष्टान्त है। दूध, दही और घी में से आत्मा निकले ऐसा है? दूध, दही और घी तो उसकी उपमा है, वह तो आत्मा की उपमा है।

अब पाँचवाँ दृष्टान्त.... यह तीन होकर एक है, हाँ! समझ में आया? रत्न का, दीपक का, सूर्य का, और यह तीन होकर एक – ऐसे चार हुए। अब, इसमें पाषाण का है। उसमें पीपर का है, अपने अन्त में दिया है न? मूल पाठ में पाषाण है और मैं जो यह बारम्बार देता हूँ, उस पीपर का दृष्टान्त... पीपर! वह इसमें है। आत्मा पीपर के समान है। पीपर में जैसे चौंसठ पहरी चरपराहट भरी है न? पीपर का दाना होता है न? चौंसठ

पहरी समझते हो ? छोटी पीपर में चौंसठ पहरी तिखास / चरपराहट भरी है, वैसे ही आत्मा में पूरा केवलज्ञान, केवलदर्शन और आनन्द पड़ा है। कहो, समझ में आया ? और उसे ही आत्मा कहते हैं। जैसे चौंसठ पहरी चरपराहट को ही पीपर कहते हैं। वैसे यह आत्मा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, अनन्त-आनन्द को ही यहाँ आत्मा कहा गया है। उसमें एकाग्र होने पर... जैसे पीपर में से शक्ति प्रगट होती है, वैसे आत्मा में से शक्ति -केवलज्ञान, केवलदर्शन और मोक्ष की दशा प्रगट होती है। उस पीपर के समान भगवान आत्मा की उपमा दी जाती है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

यहाँ पत्थर की उपमा दी है, मूल शब्द पत्थर है। **आत्मा पत्थर के समान दृढ़ और अमिट है।** जैसे मजबूत पत्थर दृढ़ होता है और एक कणी भी नहीं खिरती। संगमरमर का बहुत चिकना पत्थर होता है, बहुत चिकना, उससे भी चिकने पत्थर की जाति होती है। संगमरमर से भी बहुत चिकना, हाँ! बहुत चिकना... एक कणी भी नहीं खिरे। कणी खिरे नहीं ऐसा चिकना... चिकना... चिकना... चिकना... रजकण का स्कन्ध ऐसा चिकना, परिणमित होता है न ? कि उसमें से एक कणी नहीं खिरती; वैसे ही भगवान आत्मा, उसके असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण का पिण्ड, उसमें प्रदेश और गुण, एक अंश भी नहीं खिरता, नहीं घटता – ऐसा वह चिकना अनन्त गुण का पिण्ड भगवान है।

दृढ़ और अमिट है, अपने अन्दर अनन्त गुण रखता है। जैसे पत्थर में बहुत दृढ़ता की शक्तियाँ रहती हैं, वैसे आत्मा में अनन्तज्ञान-दर्शन आदि शक्तियाँ रहती हैं। **उन्हें कभी कम होने नहीं देता....** वह पत्थर उत्कृष्ट होता है और वह बहुत चिकना (होता है)। ऐसा का ऐसा सदा रहता है। उत्कृष्ट स्फटिक मणि है, देखो न यह लो! चन्द्र -सूर्य.... चन्द्र-सूर्य के पत्थर.... कभी एक कणी नहीं खिरती, कणी कम नहीं होती। अनादि-अनन्त ऐसा का ऐसा (रहता है)। चन्द्र-सूर्य का स्फटिक है न।

मुमुक्षु – वहाँ तो बँगले बनानेवाले हैं।

उत्तर – बँगले बनायेंगे। वह तो एक व्यक्ति ने इंकार किया है कि अब नहीं जा सकते – ऐसा आया है, सुना है ? यह सब गप्प, होने दो तो सही, वहाँ जाने के बाद आवे तो सही, अभी मरकर.... मुफ्त में गप्प ही गप्प... आकाश और पाताल एक करना चाहते

हैं। निगोद और सिद्ध मानो एक करते हों। भिन्न पदार्थ हैं। समझ में आया? आहा...हा...! सर्वज्ञ द्वारा कथित तत्त्व तीन काल में बदले ऐसा नहीं है। लोगों को शंका और सन्देह (रहता है)। वास्तविक परमात्मा ने क्या कहा है? उसका पता नहीं है।

न कभी अन्य गुण को स्थान देता है। पत्थर कहीं दूसरे को स्थान नहीं देता, वैसे ही आत्मा असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का कठिन पिण्ड, वह दूसरे को स्थान नहीं देता। इस विकल्प को भी वह स्थान नहीं देता – ऐसा आत्मा पत्थर के समान चिकना है। आहा...हा...! क्या कहलाता है? चिरोली निकलती है और बहुत ऊँची? क्या कहलाती है? तुम्हारे लड़के को प्रकाश... लो, वह प्रकाश और वह चिरोली.... चिरोली बहुत ऊँची। ऐसी मक्खन जैसी, नीचे ऐसी सफेद... सफेद... सफेद... नीचे जैसे जाते जाएँ न... आटा बनाकर सेना के व्यक्तियों को रोटियाँ खिलावे (तो) हड्डियाँ मजबूत हों। यह तो चिकना पत्थर... ऐसा आत्मा अनादि का है, उसमें से कुछ खिरे ऐसा नहीं है। अनन्त गुण का संग्रह करके पड़ा है, दूसरे को स्थान दे – ऐसा नहीं है। यह भगवान अनन्त गुण का पिण्ड, अनन्त गुण का पिण्ड – पत्थर किसी को स्थान दे – ऐसा नहीं। राग और कर्म और शरीर को स्थान दे – ऐसा आत्मा नहीं है। कहो, समझ में आया?

अगुरुलघु सामान्य गुण द्वारा यह अपनी मर्यादा में टिक रहा है। पत्थर की उपमा दी है न! **आठ कर्मों के संयोग से संसार-पर्याय में रहता है तो भी कभी अपना स्वभाव छोड़कर आत्मा में से अनात्मा नहीं हो जाता। निश्चल परम दृढ़ सदा रहता है।** विकार के पर्यायरूप भी वस्तु स्वयं-द्रव्य ज्ञायकभाव वह कभी नहीं हुआ – ऐसा दृढ़ है कि पानी की बिन्दु जैसे पत्थर में प्रविष्ट नहीं होती, मजबूत पत्थर में पानी प्रवेश नहीं पाता, मगसेलिया पत्थर ऐसे बारीक होते हैं। मगसेलिया, मगसेलिया समझते हो, मूँग के दाने जैसा। वहाँ रेत में बहुत होते हैं, हमने तो बहुत देखे हैं न! रेत के अन्दर ऐसा बारीक, चिकना... पानी छुए ही नहीं उसे। पानी रहे तो कैसा? परन्तु छुए ही नहीं। पड़ा साथ में ऐसा... बहुत चिकनाहट, मूँग के दाने जैसा। मगसेलिया पत्थर होता है, मगसेलिया। ऐसा यह पत्थर ऐसा है। रेत में बहुत होता है। राणपुर में बहुत दिखता है, वहाँ श्मशान है न? वहाँ जंगल जाते हैं न? वह क्या कहलाता है? पौहटी... वहाँ बहुत देखने को मिलते हैं, बहुत

दिखते हैं। आगे-आगे जाते हों कोई मनुष्य नहीं दिखता.... बारीक...बारीक मूँग के दाने जितने होते हैं, रेत में कोई-कोई जगह, हाँ! ऐसा चिकना... ऐसा चिकना, हाँ! इसलिए उसे मगसेलियो पत्थर कहते हैं। देखा है कभी ? ख्याल नहीं ?

इसी प्रकार यह भगवान मगसेलिया पत्थर जैसा है। राग को छूने नहीं दे, राग का पानी अन्दर प्रविष्ट न हो। समझ में आया ? कहो, भगवानभाई! देखा है या नहीं मगसेलिया पत्थर ? कोरा लगे, निकला तो ऐसा का ऐसा। मगसेलिया अर्थात् उस स्वभाववाला, ऐसा। ऐसा स्वभाव, बहुत चिकना स्वभाव। कहो, समझ में आया ?

स्वर्ण की उपमा – **आत्मा शुद्ध स्वर्ण समान परम प्रकाशवान ज्ञानधातु से निर्मित....** लो! वह सोना धातु है, स्वर्ण धातु। यह आत्मा ज्ञानधातु, उस स्वर्ण समान अनादि विराजमान है। **अमूर्तिक एक अद्भुत मूर्ति है।** सोने को ऐसे देखो तो सोने की मूर्तियाँ आहा...हा... ! लोग देखने निकलें, हाँ! समान मूर्ति हो, सोने की और पाँच सेर की मूर्ति हो, कारीगरी (हो).... आहा...हा... ! यह आत्मा असंख्य प्रदेशी अकेली स्वर्णमयी मूर्ति है। समझ में आया ? चैतन्यधातु है।

संसारी आत्मा खान में निकला हुआ धातु, पाषाण, स्वर्ण की तरह अनादि से कर्मरूपी कालिमा से मलिन है। पर्याय में, हाँ! **अग्नि आदि के प्रयोग से जैसे सोने की धातु, पाषाण से अलग करके शुद्ध कुन्दन की जाती है....** लो! सोने को जैसे अग्नि का निमित्त मिलने से अपने उपादान से जैसे सोना शुद्ध हो जाता है; इसी प्रकार **आत्मध्यानरूपी अग्नि द्वारा....** भगवान आत्मा अपने स्वरूप की एकाग्रतारूपी ध्यान की अग्नि से यह भगवान आत्मा, स्वर्ण की तरह सोलहवान... सौ प्रतिशत सोना... क्या कहलाता है ? सौ कैरेट का, ऐसा आत्मा सौ प्रतिशत स्वर्ण स्वभाव से है, स्वभाव से है। सोलहवान ही स्वभाव से है। उसमें एकाग्र होवे तो पर्याय में सोलहवान (पूर्ण शुद्ध) हो जाता है – ऐसा स्वर्ण समान है।

चाँदी-समान। चाँदी-समान परमशुद्ध और निर्मल, ऐसा। एक क्षेत्र में साथ रहा होने पर भी उसकी सफेदी-वीतरागता जाती नहीं है। वीतरागतारूपी सफेद उसमें भरी है। कहो, यह तो सबके प्रिय चाँदी और स्वर्ण के दृष्टान्त हैं।

मुमुक्षु – देखा हो तब ऐसा कहे कि अनुपम है, फिर उपमा तो देते हैं।

उत्तर – उसे वास्तव में उपमा नहीं है। यह तो दृष्टान्त है, यह उपमा नहीं है। यह तो दृष्टान्त है कि इस प्रकार से यह जैसा है, ऐसी चीज ऐसी अलौकिक है, ऐसा। समझ में आया? ठीक कहते हैं यह, बीच में लकड़ा (विपरीतता) डालते हैं, हाँ!

मुमुक्षु – वहाँ नौ दृष्टान्त....

उत्तर – नौ क्या अनन्त दृष्टान्त हैं। जितने जगत् में उत्तम-उत्तम दृष्टान्त होते हैं, वे सब आत्मा को लागू पड़ते हैं। दृष्टान्तों का क्या? कहो, समझ में आया?

जैसे चाँदी अपनी सफेदाई को कभी नहीं छोड़ती; उसी प्रकार भगवान आत्मा अपनी निर्मलता की सफेदी, वीतरागता की सफेदी, निर्दोष आनन्द की सफेदी कभी नहीं छोड़ता। आहा...हा...! **ज्ञानी आत्मारूपी चाँदी का सदा व्यवहार करता है....** लो! वह चाँदी का व्यापार करते हैं न? चाँदी के व्यापारी नहीं कहते? वह चाँदी का व्यापारी है। यहाँ कहते हैं, ज्ञानी आत्मारूपी चाँदी का सदा व्यापार करता है। यह वीतरागता की सफेदाई को प्रगट करता है। आहा...हा...! चाँदी का व्यापारी है, नहीं कहते? यह सोने का व्यापारी है, यह रत्न का व्यापारी है। झवेरी कहते हैं न? अपने वे मूलचन्दजी आते हैं, वे चाँदी के व्यापारी हैं।

कहते हैं, चाँदी का व्यापार.... भगवान आत्मा तो सदा चाँदी का व्यापार, वीतरागता की सफेदाई से भरपूर तत्त्व, उस वीतरागता की सफेदी को प्रगट करने का ही ज्ञानी का व्यापार-धन्धा है। कहो, यह राग-वाग, पुण्य-पाप करना, यह उसका धन्धा नहीं है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहा...हा...! **आत्मा के अन्दर ही रमणता करता है, वह कभी परमानन्दरूपी धन से शून्य नहीं होता।** लो, चाँदी के साथ कहा। समझे न?

आठवाँ स्फटिकमणि का दृष्टान्त – **स्फटिक मणि के समान निर्मल और परिणमनशील है।** निर्मल और परिणमनशील इतनी, दो उपमा लेना, बाकी बहुत डाला है। **जैसे स्फटिकमणि लाल, पीली, नीली वस्तु के सम्पर्क से लाल, पीले-नीले रंगरूप परिणमन करती है तो भी अपनी निर्मलता को खो नहीं बैठती....** यह अवस्था में स्फटिक का लाल आदि रंग दिखता है, तथापि वह स्फटिकपने की स्वच्छता

को नहीं छोड़ता। समझ में आया ? इसी प्रकार आत्मा रागादि दशा को धारण करने पर भी वस्तुस्वरूप से स्फटिकमणि जैसा है, वह स्फटिकमणि कभी राग-रूप नहीं होती। ज्ञानी कदापि.... यह आता है न ? क्या कहा यह ? स्फटिकमणि में कहा न ? ज्ञानी, रागरूप परिणमति नहीं होता। ज्ञानी अर्थात् द्रव्य; ज्ञानी अर्थात् आत्मद्रव्य। वहाँ विवाद उठा न यह सब ? देखो ! दृष्टान्त देंगे। देखो !

'जह फलियमणि विसुद्धो ण सयं परिणमदि रागमादीहिं' देखो, है न ? स्फटिकमणि (जैसे) विशुद्ध (है वैसे) रागादि (रूप से) स्वयं नहीं परिणमती। वस्तु स्फटिकमणि का रागरूप / रंग-रूप परिणमित होना स्वभाव ही नहीं है। वैसे ही वस्तु का रागरूप होना – ऐसा स्वभाव ही नहीं है। बन्ध अधिकार है न ? बन्धरूप होना – ऐसा अबन्धस्वभावी आत्मा का स्वभाव ही नहीं है, समझ में आया ? ऐसा कहते हैं। तब वे कहें, देखो ! परद्रव्य के कारण बन्ध है.... परन्तु इस स्वद्रव्यस्वरूपी अबन्धस्वरूप में बन्ध नहीं होता, इससे अबन्ध भगवान आत्मा, बन्धपने को परिणमित हो – ऐसा उसका स्वरूप ही नहीं है। वह जब परलक्ष्य करके ममता करता है, तब पर्याय में बन्धभाव से परिणमता है। वह तो परद्रव्य के लक्ष्य से परिणमता है। स्वद्रव्य का स्वभाव बन्धरूप परिणमना – ऐसा है नहीं। समझ में आया ? यह बड़ी विवाद की गाथा है। आहा...हा... !

यह कहते हैं देखो ! द्रव्य का स्वभाव राग (रूप) होने का नहीं है, यह लिखा, देखो ! **'राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादियेहिं दव्वेहिं।'** देखो ! **'एवं णाणि सुद्धो ण सयं परिणमदि रागमादीहिं।'** देखो ! वह द्रव्य स्वयं रागरूप परिणमित होने का उसका स्वरूप ही नहीं है। द्रव्य का स्वभाव होवे ऐसा ? वह द्रव्य स्वयं जब पर का लक्ष्य करे, तब पर्याय में पर की ममता आदि (भाव से) पर्याय में रागरूप होता है। वस्तु स्वयं कब होती थी ? समझ में आया ? इस गाथा का विवाद ठेठ से चलता है, ए... वहाँ से – ईसरी से। विकार होता है, वह निरपेक्ष अपनी पर्याय से होता है। बस, पकड़े गये वे लोग, पकड़े गये।

भगवान आत्मा बन्धस्वभावी है ही नहीं। वह तो स्फटिकमणि जैसा है। देखा ? स्फटिक मणि जैसे स्वयं लाल आदि (रूप) परिणमे, वह स्वयं परिणमता है। वह तो

पर्याय में निमित्त के संग से एक समय की दशा (है), बन्धस्वभावी भगवान न होने पर भी पर्याय में – एक अंश में बन्धपना हुआ, वह अबन्धद्रव्य का स्वभाव नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया? वह तो पर्यायदृष्टि का परिणमन है, वह द्रव्यदृष्टि में द्रव्य का परिणमन है ही कहाँ? द्रव्यस्वभाव वैसा है ही कहाँ? ऐसा बतलाना है। ओ...हो...! ऐसा सीधा सत्... सत् स्वत: सहज सरल, सतत् सुलभ है।

भगवान आत्मा अकेला स्फटिक जैसा, तीन काल-तीन लोक, काल और क्षेत्र में अपना भाव छोड़कर विकाररूप होवे – ऐसा उसका स्वरूप है ही नहीं। समझ में आया? भाव अर्थात् गुण, शक्ति। वह फिर इन्होंने लिखा है.... ऐसा कुछ नहीं। (जयसेनाचार्य की गाथा का दृष्टान्त दिया है। ३०० से ३०१) २७८ में (अमृतचन्द्राचार्य की टीका में) है। उस स्फटिकमणि में से (उस दृष्टान्त से) आत्मा निकलता है। आहा...हा...! देह में चैतन्य स्फटिकमणिरत्न है। अनादि-अनन्त चैतन्यरत्न स्फटिकमणि है – ऐसी दृष्टि करने से उसे सम्यक् रत्न प्रगट होता है। वह रत्न स्फटिक रत्न है, उसकी दृष्टि करने से सम्यक् रत्न प्रगट होता है। राग की-पुण्य की दृष्टि करने से सम्यक्रत्न होगा? वे (कहाँ) रत्न हैं? रत्न तो यह है। आहा...हा...! समझ में आया?

नौवाँ अग्नि का दृष्टान्त.... **यह आत्मा अग्नि के समान सदा जलता रहता है।** सदा ज्वाजल्यमान ज्योति है। जैसे अग्नि में प्रकाश, दाहक और पाचक गुण है, वैसे ही आत्मा में भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र त्रिकाली गुण हैं। समझ में आया? अग्नि, प्रकाशक है; अनाज को पचाती है; ईंधन को जलाती है। दाहक-जलाती है; ऐसे ही भगवान अग्नि के समान हैं, जिसका त्रिकाल स्वभाव चैतन्य का, स्व-पर का प्रकाशित करने का है, पाचक का है, पूर्ण तत्त्व पचा सके – ऐसी ताकत उसमें त्रिकाल पड़ी है, पूर्णानन्द का नाथ मैं परमेश्वर पूरा एक समय में हूँ – ऐसी पचाने की शक्ति उसमें त्रिकाल पड़ी है और उसमें चारित्र नाम का त्रिकाल गुण है कि जो अज्ञान और राग-द्वेष को जलाकर राख करता है – ऐसा उसमें त्रिकाल गुण है। कहो, समझ में आया इसमें? कहो, यह तो दृष्टान्त में से तो समझ में आवे ऐसा है या नहीं? दृष्टान्त में से मिले – ऐसा नहीं भले। हैं? दृष्टान्त में से मिले? दृष्टान्त में से समझ में आये ऐसा है, मैंने ऐसा कहा। कहो, समझ में आया?

अग्नि **किसी भी विषय या पर का आक्रमण होने नहीं देती।** अग्नि (के ऊपर) आक्रमण होता है? सूक्ष्म जीव आकर उसे दबा दें? समझ में आया? जलहल ज्योति... जलहल ज्योति, चैतन्यप्रकाशमय, पाचकमय और दाहकस्वभावमय, उसे कोई आक्रमण करके ढाँक दे – ऐसा वह तत्त्व नहीं है। **जब वह संसार-पर्याय में होता है, तब वह स्वयं ही अपने आत्मिक ध्यान की अग्नि जलाकर अपने कर्ममल को भस्म करके शुद्ध हो जाता है।** लो, ऐसी अनुपम अग्नि, कर्म ईंधन की दाहक। लो! यहाँ कर्म ईंधन की दाहक (कहा)। जला देती है। **आत्मिक बल की पोषक है, और सदा ज्ञान द्वारा स्व-पर प्रकाशक है।** ऐसा लिया। आत्मबल की पोषक है, यह बल का डाला। **इन नौ दृष्टान्तों से आत्मा को समझकर....** देखो! ऐसा लिया, दृष्टान्तों से समझकर... दृष्टान्तों में आत्मा नहीं है। **समझकर पूर्ण विश्वास प्राप्त करना चाहिए।** भगवान आत्मा को इन नौ दृष्टान्तों से पहचानकर अपने स्वभाव का पूर्ण विश्वास करना चाहिए। कहो, यह तो सरल बात है या नहीं? यह दृष्टान्त सरल... समझ में आया या नहीं? हैं?

मुमुक्षु – दृष्टान्त भी आप समझाओ (तब समझ में आते हैं)।

उत्तर – लो, समझाओ, तब समझ में आते हैं.... यह ५७ गाथा (पूरी हुई)। यह तो दृष्टान्त थे इसलिए (लम्बी चली)। चालीस मिनिट हो गये।

☆ ★ ☆

देहादिरूप मैं नहीं हूँ – यही ज्ञान, मोक्ष का बीज है

देहादिउ जो परु मुणइ, जेहउ सुण्णु अयासु।
सो लहु पावइ बंभु परु, केवलु करइ पयासु॥५८॥

देहादिक को पर गिने, ज्यों शून्य आकाश।
लहे शीघ्र परब्रह्म को, केवल करे प्रकाश॥

अन्वयार्थ – **(जेहउ अयासु सुण्णु)** जैसे आकाश परपदार्थों के साथ सम्बन्धरहित है, असङ्ग अकेला है **(देहादिउ जो परू मुणइ)** वैसे ही शरीरादि को जो अपने आत्मा

से पर जानता है **(सो परू बंभु लहु पावइ)** वही परम ब्रह्मा स्वरूप का अनुभव करता है **(केवल पयासु करइ)** व केवलज्ञान का प्रकाश करता है।

☆ ★ ☆

अब कहते हैं – **देहादिरूप मैं नहीं हूँ – यही ज्ञान, मोक्ष का बीज है।** लो! यह ज्ञान, मोक्ष का बीज है, दुनिया का कोई ज्ञान, मोक्ष का बीज नहीं है। देहादि मैं नहीं – 'देहादि' शब्द है न? (अर्थात्) देह, वाणी, मन, राग, द्वेष, कल्पना – यह इत्यादि मैं नहीं हूँ।

देहादिउ जो परु मुणइ, जेहउ सुण्णु अयासु।
सो लहु पावइ बंभु परु, केवलु करइ पयासु॥५८॥

जैसे शून्य आकाश.... इस आकाश को किसी भी पदार्थ का सम्बन्ध दिखने पर भी, इसे सम्बन्ध नहीं है। उसी प्रकार भगवान आत्मा देह, वाणी, कर्म, यह माता-पिता, कुटुम्ब-कबीला, बाहर का क्षेत्र, काल का संयोग दिखता है परन्तु उस संयोग में आत्मा है ही नहीं, प्रत्येक संयोग से आत्मा निराला है। जैसे आकाश व्यापक है, निर्मल है; उसमें सभी पदार्थ इकट्ठे पड़े दिखते हैं, तथापि आकाश उससे भिन्न है। आकाश कभी उन परपदार्थरूप हुआ नहीं है और परपदार्थ, आकाशरूप हुए नहीं हैं। कहो, समझ में आया?

आकाश परपदार्थों के सम्बन्धरहित है, असंग.... अकेला है; वैसे ही भगवान आत्मा अभी और त्रिकाल, राग के सम्बन्ध में, माता-पिता, कुटुम्ब, स्वजन-बैरी-शत्रु.... समझ में आया? कर्म, उसके मध्य में रहा हुआ तत्त्व, तथापि उनके साथ से बिल्कुल भिन्न है, बिल्कुल भिन्न है। कुछ लेना या देना... पर के साथ सम्बन्ध नहीं है। कहो, समझ में आया? आकाश में इतने-इतने बादल होते हैं, कितने पंच रंगी... मूसलधार वर्षा पड़े, आकाश को कुछ लेना-देना नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा आकाश के समान निर्लेप असंग और भिन्न है, उसे भिन्न पदार्थ जितने-जितने कहे जाते हैं – दया, दान के विकल्प से लेकर जितने पर (पदार्थ), उन्हें और इसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। ओहो...हो...! ऐसे आत्मा को अन्दर अनुभव करने का नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है।

मुमुक्षु – आकाश में कुछ विक्रिया होना सम्भव नहीं है।

उत्तर – परन्तु किसकी विक्रिया? आकाश में होती है? वैसे ही आत्मद्रव्य में नहीं। पर्याय भी एक समय की कृत्रिम अवस्था है, वह कहाँ त्रिकाली तत्त्व है? वह तो आस्रवतत्त्व है, वह कहीं आत्मद्रव्य नहीं है।

मुमुक्षु – इसकी है।

उत्तर – नहीं, नहीं.... इसकी है ही नहीं – ऐसा है यह। विकृत अवस्था, वह आस्रवतत्त्व है; आत्मतत्त्व नहीं। कहो, समझ में आया? पर्याय भले वह, परन्तु पर्याय अर्थात् आस्रवतत्त्व। भगवान ज्ञायकतत्त्व.... आकाश को और पर को कुछ सम्बन्ध नहीं है, अग्नि का भवका आकाश में हो, हड.... हड... हड... हड... हड... (होते) हों, आकाश को कुछ सम्बन्ध है? अग्नि का और उसका कुछ सम्बन्ध है? किसको? आकाश को। पूरा बड़ा पर्वत जले, लगातार ऐसी श्रेणी, हाँ! जलते हों। आकाश को कुछ सम्बन्ध नहीं है। भगवान-आकाश, अरूपी आकाश के समान असंख्य प्रदेशी निर्लेप, असंग है।

यह शरीर बड़ा फोड़ा पूरा है। लो यह.... शरीर स्वयं ही फोड़ा है। इस फोड़े में चाहे जैसा भभका हो तो आत्मा को कुछ स्पर्श करे – ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? कहते हैं न? एक अंगुल में छियानवें रोग.... कुन्दकुन्दाचार्य महाराज कहते हैं न? शरीर के एक अंगुल में छियानवें रोग.... परन्तु वे रोग शरीर में हैं, आत्मा को छूते ही नहीं न! आकाश पड़ा है, वहाँ भड़का हो, वह भड़का आकाश को छूता ही नहीं न! आहा...हा...! समझ में आया? ऐसा चैतन्य ज्योत भड़का आकाश के समान अरूपी असंग, उसे यह देहादिक का शरीर आदि.... शरीर आदि (शब्द से) वाणी, मन, सब अपने आत्मा से पर जानता है, वह पर है, पर है। मुझे और उसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

छियानवें-छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़ा हो परन्तु आकाश (के साथ) पर का एकपना नहीं होता। वैसे ही आत्मा को-सम्यग्ज्ञानी को – इसे और मुझे कुछ (लेना-देना नहीं)। पर, वह सब अलग, निराले रहे हैं, शामिल कभी हुए ही नहीं। छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़ा दिखे, हीरा-माणिक के ऐसे बड़े हार पहने हों....

चैतन्य-आकाश को वे चीजें, असंग को संग करती नहीं, वे असंग का संग करती नहीं। आहा...हा...! स्वयं असंग चीज, पर का संग नहीं करता और संगवाली चीज असंग को स्पर्श नहीं करती – ऐसा आकाश के समान भगवान आत्मा, असंग और निर्लेप – पर से भिन्न है, लो! बड़ी उपमा दे दी।

'सो परु बंभु लहु पावइ' अनेक संग के प्रसंग में रहा होने पर भी, स्वभाव (तो) संग-प्रसंग रहित है, असंग है। समझ में आया? ऐसी दृष्टि करनेवाले को परमब्रह्म परमात्मा प्राप्त होता है। समझ में आया? यह तो अकेला मक्खन है। योगसार है न? आहा...हा...!

मुमुक्षु – दृष्टान्त ऐसा है न कि प्रत्यक्ष तत्काल अनुभव हो परन्तु यह करता नहीं है।

उत्तर – यहाँ भी कितनी हौंश की है? ऐसा चुपड़ना और ऐसा फूलाफाला दिखे वहाँ, भाईयों को और लड़कों को हौंश दिखावे। मानो हमने कितने काम किये! कितने करते हैं? देखो! तुम्हें ऐसा करना, तब हमने बड़प्पन लिया है और तुम मुझे बड़प्पन देते हो.... बाहर में भी ऐसे फूले-फूले.... देखो, यह सब काम करते हैं। देखो, ऐसा करते हैं, हाँ! हम अकेले ऐसे नहीं निभते, तुम्हारे आश्रय से निभते नहीं। हम अपने उससे निभते हैं... ऐसा है, ऐसा है। धूल-धाणी और वाह पानी.... ऐ... मोहनभाई! इसमें जैसे हौंश है... ऐसा यहाँ कहना है। ऐसी अपनी हौंश दूसरे को बताकर स्वयं अधिक हूँ – ऐसा जो कहना चाहता है, ऐसा यहाँ रागादि से मेरी हौंश बताना? ज्ञानादिक से मैं अधिक हूँ, ज्ञानादिक से मैं अधिक हूँ, राग से अधिक हूँ नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

परमब्रह्म स्वरूप का अनुभव करता है.... केवलु पयासु वह **केवलज्ञान का प्रकाश करता है।** आकाश जैसा भगवान आत्मा.... अरे... दृष्टान्त भी कैसे! सिद्धान्त को सिद्ध करें वैसे! आहा...हा...! समझ में आया? कहो, समझ में आया?

जैसे आकाश में एक ही क्षेत्र में.... एक ही क्षेत्र में आत्मा आकाश है, वहाँ एक क्षेत्र में धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल दूसरे जीव, जड़, परमाणु, पुद्गल, नारकी, देव, तीव्रतम नारकी के दुःख, बाहर की अनुकूलता का पार नहीं – ऐसे स्वर्ग के सुख, ये आकाश को छुएँ या आ मिलें, (ऐसा) कुछ नहीं होता। इसी प्रकार भगवान सर्व व्यापक

जहाँ हो, वहाँ जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला.... ऐसा भगवान सर्व व्यापक आत्मा, वह चाहे नरक के संयोग की दशा में हो, स्वर्ग के अनुकूल की दशा में हो, शरीर का तीव्रतम (रोग) हो, रोग से शरीर सड़ता हो, उसे कुछ छूता या अड़ता नहीं है। आहा...हा...! ऐसा आकाश की तरह आत्मा पर से अत्यन्त असंग है – ऐसी दृष्टि, अनुभव करने से उसे परमब्रह्म परमात्मा अपना स्वरूप प्राप्त करता है और क्रम से केवलज्ञान पाता है, यह उसका उपाय है। कहो, समझ में आया इसमें?

जिसमें अनन्त जीव, अनन्त पुद्गल **उनकी परिणति से आकाश में कोई विकार या दोष नहीं होता....** आता है? कोई गाली दे, तलवार से मार डाले, खून करे, उसमें आकाश को कुछ है? **आकाश उससे बिल्कुल शून्य है....** उनसे बिल्कुल शून्य **निर्लेप, निर्विकार बना रहता है, कभी भी उनके साथ तन्मय नहीं होता।** छठी गाथा में कहा है न? ज्ञायक तो ज्ञायकभाव ही रहा है, कभी जड़ नहीं हुआ। जड़ अर्थात् विकल्परूप नहीं हुआ, ऐसा। विकल्प, अचेतन है। चैतन्य के प्रकाश का तेज-सत्व, वह अचेतन विकल्परूप कब होगा? अकेला चैतन्य का रसकन्द शाश्वत् सत्व, उसे विकल्प जो अचेतन जाति है, उसरूप ज्ञायक कभी नहीं होता। चैतन्य मिटकर तीन काल-तीन लोक में जड़ नहीं होता – ऐसे आत्मा को अन्तर्दृष्टि और ज्ञान में लेना, वह परमात्मपद प्राप्ति का उपाय है। यह योगसार है, देखो!

ऐसा हूँ, आकाश के समान। बाद की गाथा में यह कहेंगे, आकाश जड़ है और यह चैतन्य है – इतना अन्तर है, बाद की गाथा में कहते हैं। समझ में आया? ५९ में कहते हैं न? यहाँ तो आकाश की उपमा दी है न?

जेहउ सुद्ध अयासु जिय, तेहउ अप्पा वुत्तु।
आयासु वि जडु जाणि जिय, अप्पा चेयणुवंतु॥५९॥

यह बाद में आयेगी। इसके साथ सन्धि करते हैं न? समझ में आया? आकाश की सत्ता अलग और आकाश में रहनेवाले पदार्थ की सत्ता अलग है न? या एक है? यह स्त्री, पुत्र और राग की सत्ता तथा आत्मा की सत्ता एक होगी या अलग? हैं? सब इकट्ठे रहे होंगे

या एक (होकर रहे होंगे) ? यहाँ (अलग) कहते हैं, वहाँ घर जाये तो पता पड़े इसे। वह 'पूनमचन्द' कहे, बापूजी ! मैं कुछ तुम्हारा धर्म छोड़ूँगा नहीं, हाँ ! आहा...हा... !

ज्ञानी को समझना चाहिए कि आत्मा आकाश के समान अमूर्तिक है, आत्मा के सर्व असंख्यात प्रदेश अमूर्तिक है.... यह कुछ नहीं। आधार-आधार की बात नहीं, वे तो अलग रही हुई चीजें हैं। यहाँ अलग चीज भले तैजस और कार्माण (शरीर) रहे परन्तु वे अलग के अलग ही। आधार-फाधार आत्मा की पर्याय का भी उन्हें नहीं है। समझ में आया ? भिन्न-भिन्न है। लो !

कषाय की मन्दता, तीव्रता का भाव, उससे भी आत्मा अत्यन्त भिन्न है। **मेरा कोई सम्बन्ध मन-वचन-काया की क्रिया के साथ नहीं है।** लो, वे कहते हैं, मन -वचन और काया की क्रिया से आत्मा को बन्ध होता है और धर्म होता है। हैं ? आहा...हा... ! मन, वचन और काया की क्रियाओं के साथ मुझे और उसे कोई सम्बन्ध नहीं है। सम्बन्ध नहीं इसलिए धर्म नहीं और सम्बन्ध नहीं उससे बन्ध भी नहीं। आहा...हा... ! **मैं बिल्कुल पर के मोह से शून्य हूँ, मैं परम वीतरागी और निर्मल हूँ।** ऐसा ठीक लिखा है। **जगत् में मेरे आत्मा को कोई माता-पिता है न कोई पुत्र है, न मित्र है, न कोई स्त्री है, न बहिन है, न पुत्री है, न कोई मेरे आत्मा का स्वामी है, न मैं किसी का स्वामी हूँ, न मैं किसी का सेवक हूँ, नहीं मेरा कोई सेवक है, न मेरा कोई गाँव है, न धाम है....** गाँव भी नहीं और धाम भी नहीं। **न कोई वस्त्र है न आभूषण है।** लो !

मुझे परवस्तु के साथ किसी भी प्रकार का रंचमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। आहा...हा... ! देखो ! यह भेदज्ञान है, यह भेदज्ञान है। है, वैसा ज्ञान, ऐसा। भेदज्ञान अर्थात् ? जैसी चीजें पृथक् है, वैसा उनका ज्ञान (होना), उसका नाम भेदज्ञान है। **मुझमें समस्त पर का अभाव है, समस्त पर में मेरा अभाव है।** मुझमें पर का अभाव और पर में मेरा अभाव है। **विश्व के अनन्त संसारी और सिद्धात्माओं....** जगत् के – संसार के अनन्त जीव या सिद्ध के **अपने मूल स्वभाव से मेरे आत्मा के स्वभाव जैसे ही हैं। तो भी मेरी सत्ता भिन्न ही है....** भले अनन्त सिद्ध और अनन्त संसारी मेरी सत्ता जैसे हैं, शुद्ध सत्ता

जैसे हैं, तथापि मेरी शुद्ध सत्ता से वे निराले हैं। एक नहीं कुछ, शुद्ध सत्ता एक नहीं हो जाती है। आहा...हा...! कहो, समझ में आया?

मेरे ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यक्त्व, चारित्र, चेतना आदि गुण, निराले है, मेरा परिणमन निराला है.... उनके गुण निराले उनका परिणमन निराला, मेरे गुण निराले, मेरी परिणति निराली... **समस्त आत्माओं का परिणमन निराला है। मैं अनादि काल से अकेला ही रहा हूँ और अनन्त काल तक अकेला ही रहनेवाला हूँ।**

अनादि संसार भ्रमण में मेरे साथ अनन्त पुद्गलों का संयोग हुआ परन्तु वे सब मुझसे दूर रहे हैं। लो! **जैसे सूर्य के ऊपर बादल आने पर भी सूर्य अपने तेज में प्रकाशवान रहता है....** सूर्य पर वर्षा बरसे तो सूर्य को कुछ होगा? बादल-बादल से (कुछ होता होगा) **संसार अवस्था में अनेक माता-पिता, भाई-पुत्र के साथ सम्बन्ध प्राप्त किया परन्तु वे सब मुझसे भिन्न ही रहे हैं....** लेना या देना कुछ नहीं था। **बहुत परपदार्थों का संग पाया परन्तु वे मेरे नहीं हुए....** एक रजकण भी अपना नहीं हुआ। दो भाई तो, 'डण्डे मारने से पानी अलग नहीं पड़ता' ऐसा लोग कहते हैं। कैसे होगा? पाँच भाई भिन्न हो गये, तुम्हारे लड़के भी अलग हो गये। अलग तो अलग ही होंगे न! अलग हों वे अलग ही होंगे। आहा...हा...! **मैं उनका नहीं हुआ।** लो! **'देहादिउ जो परु मुणइ'** देहादि पर का अनुभव कर, पररूप है, ऐसा। तू तेरा चैतन्यमूर्ति है – ऐसा अनुभव कर। **इसलिए मुझे ऐसी ही दृढ़ श्रद्धा रखनी चाहिए कि मैं सदा रागादि विकारों से शून्य रहा था, अभी भी हूँ और भविष्य में भी (शून्य) रहूँगा।** लो! फिर परमात्मप्रकाश का दृष्टान्त दिया है, तत्त्वानुशासन का दृष्टान्त दिया है। लो! समझ में आया? बस! दो हुए, ५९ वीं कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)